RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

21वीं सदी की प्रसिद्ध कवयित्रियों के काव्य में स्त्री विमर्श

रेखा रानी

शोधार्थी (हिन्दी विभाग) जे.जे.टी.यू., झुंझनू (राजस्थान)

स्त्री विमर्श अनेक विरोधों के बावजूद 21वीं सदी की हिन्दी कविता में अपना पृथक अस्तित्व बना चुकी हैं । वर्तमान में स्त्री–विमर्श और स्त्रीवादी या महिला–लेखन पर काफी कुछ सार्थक लिखा जा रहा है । हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श का उद्‌भव स्वतः ही मानसिक भावों के उद्‌वेलन तथा उनकी अभिव्यक्ति से हुआ है अर्थात् कोई सायास प्रयास नहीं है । वर्तमान जीवन शैली से प्रभावित अनेक साहित्यकारों ने इस विमर्श पर अपने परिवेश से जुड़ी स्त्री सम्बन्धी समस्याओं को रचनाओं के माध्यम से उकेरा है । साहित्यकारों का एक बहुत बड़ा पुरुष वर्ग 20वीं सदी से ही स्त्री विमर्श को वर्णित करता रहा है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक नये युग का साहित्य में और हमारी जीवन शैली में पदार्पण हुआ । साहित्य के क्षेत्र में स्त्री–लेखन की बाढ़–सी आई गई क्योंकि अनेक कवयित्रियों एवं लेखिकाओं ने पुरानी परम्पराओं की बेड़ियों को तोड़कर साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया । यह एक प्रकार का विद्रोह ही था–स्त्री समाज का । धीरे–धीरे प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री अपनी योग्यताओं के कारण पुरुष समाज के बराबर आकर खड़ी हो गई या यूँ कहे आगे निकलने लगी । चिरकाल से घर की चाहर दिवारी में बंद स्त्री अपने अधिकारों से परिचित होकर उन पुरानी सड़ी–गली परम्पराओं को तोड़ने लगी । जिन्होंने उनके अस्तित्व को दबाकर रखा था । हालांकि अनेक कवि एवं लेखकों ने भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किया परन्तु फिर भी स्वानुभूति एवं सहानूभूति से बहुत अंतर होता है । स्त्री रचनाकार ही स्त्री मानसिकता को अभिव्यक्ति देने में सक्षम है । परिणामस्वरूप धीरे–धीरे अनेक कवयित्रियों के नाम इस कड़ी में जुड़ने लगे और आज एक सशक्त कवयित्रियों का समूह इस विमर्श की सार्थक परवी के लिए उपस्थित है । 21वीं सदी में स्त्री विमर्श विपुल साहित्य लिखा गया है । इसमें कितना सार्थक सहित्य है तथा कितना स्तरीय इस पर अभी कोई निर्णायक टिप्पणी नहीं की जा सकती है ।

हिन्दी कविता में गत दो–तीन दशकों से अधिक समय से लेखन में स्त्रीवादी चिन्तन और उसकी मुक्ति–स्वावलम्बन पर आधारित एक बहस संवाद–विवाद– विमंडावाद–विद्रोह स्वर आदि किसी न किसी रूप में सामने आ रहे हैं । इस विमर्श ने एक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया है । शुरू में इसे अनदेखा–अनसुना भी किया गया, विरोध और पक्ष बना रहा । धीरे–धीरे स्त्री विमर्श को रचनात्मक धरातल पर समझने का प्रयास किया गया । इसे कोरी स्त्री की खीज का परिणाम न मानकर साहित्यिक महत्व माना गया । साहित्य वही होता है जिसमें समाज के लिए कुछ उपदेय हो और स्त्री तो आधी आबादी है । इसके अस्तित्व को स्वीकारे बिना समाज का विकास संभव ही नहीं है । स्वतंत्र समाज में स्त्री की स्वतंत्रता को स्वीकार क्यों नहीं करता ? क्यों उसे अभी भी उसी रूप में देखना चाहता है–बेड़ियों में जकड़ी । अपने इस मुक्ति संघर्ष में समाज में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार अनाचार–अनाधिकार चेष्टाओं का विरोध किया । यह तो सच है कि हमें स्वतंत्रता तो प्राप्ति हुई, अपना संविधान, अपना जनतंत्र शासन प्रणाली है, सभी को समान अधिकार प्राप्त हैं, लिंग भेद का कोई आधार अब नहीं रहा है तो स्त्री को समान अधिकार क्यों नहीं मिल पा रहे हैं ? उसे क्यों अनेक माध्यमों से अपनी लड़ाई लड़नी पड़ रही है । जब संविधान बना था तो उनके लिए भी समान अधिकार क्यों रखे गये थे, उसके लिए कोई अलग प्रावधान करना चाहिए था । यदि समान रखा है तो समान समझा भी जाना चाहिए । संविधान में लिखने भर से समान अधिकार नहीं मिलते–यह बात स्त्री समझ चुकी है । उसे विरोध करना शुरू कर दिया है । क्यों एक ही काम स्त्री के लिए निकृष्ट एवं पुरुष के लिए उत्कृष्ट है ? अपने इस विद्रोह को, स्त्री काव्य के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करने लगी और स्त्री–विमर्श, स्त्रीवादी लेखन की नींव पड़ गई । एकाएक साहित्य (कविता) में स्त्री विमर्श का शोर सुनाई देने लगा । सही अर्थों में यह शोर नहीं था, यह एक चेतस् संवाद की शुरूआत थी । नारी मुक्ति के इस स्वर ने एक आन्दोलन का रूप ले लिखा । चारों ओर इस पर संवाद, संगोष्ठियॉ और सभाओं का सिलसिला शुरू हुआ । स्त्री–विमर्श (चेतना) को दृष्टि में रखते हुए यह कह सकते हैं कि इसमें काफी कुछ सटीक सार्थक और स्तरीय है । सुनीता जैन, अनामिका, गगन गिल, कार्व्यायनी, तेजी ग्रोवर, मुक्ता, सुधा, उषा, आर0 शर्मा ने काफी कुछ लीक से हटकर लिखा है जो विचार भाव (संवेदना) के साथ कल्पना और सौन्दर्य, भाषिक कलात्मक, संश्लिष्ट, सांकेतिक एवं प्रतीतकात्मक है ।

सविता सिंह अपने काव्य संग्रह **"नींद थी और रात थी"** में नारी जीवन की संघर्षमय गाथा का सहानुभूति एवं स्वानुभूति के परिप्रेक्ष्य में गहन चिंतन करती हुई "मैं कथा कहुँगी" कविता में कहती हैं–**स्त्रियों ! / बार–बार मैं तुम्हारी कथा कहूँगी/उतरूँगी जीवन की अँधेरी खोह में /दूर तक बढ़ूँगी/पहुँचूंगी वहाँ जहाँ तक थोड़ी–सी रोशनी बाकी होगी । /देखूँगी तुम्हारे प्राचीन चेहरे /जो अब तक दस्तावेजों की तरह सुरक्षित होंगे वहाँ /उससे ही जान लूँगी तुम्हारा हाल/और यह सब समझ लूँगी कि बहुत फर्क़ नहीं है/एक दूसरे के हाल–चाल में अब भी ।**[1]

सामाजिक परिवेश में स्त्री हमेशा अपने आप को असुरक्षित महसूस करती है । घर में और घर के बाहर प्रत्येक जगह उसे भय, द्वेष एवं स्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है । **सविता सिंह** अपनी कविता **"एक शीशा थी वह"** कविता में इसी बैचेनी को व्यक्त करती है– **बदल गई थी मगर वह एक पारदर्शी शीशे में /जिससे आर–पार देख रही थी खुद को**

RRIJM 2015, All Rights Reserved

/पसरा था बाहर अब भी कितना भय कितनी घृणा/द्वेष और स्पर्द्धा उसके लिए / मृत्यु और नींद महसूस होती थी उसको /एक विस्तार अजीब–सा /भयावह और सुनसान इस समय ।''[2]

आधुनिक युग की कवयित्रियों ने स्त्री की मनोदशा को सौंहार्द और आत्मीयता से समझा है । संवेदना का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जिसे महिला लेखन ने संस्पर्श न किया हो । स्वयं के जीवन की तथा अपने सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक पीड़ित–शोषित स्त्री की मनोव्यथा को इनकी कलम ने पकड़ा है । महिला लेखन में कवयित्रियों ने वर्तमान परिदृश्यों के सन्दर्भ में व्यंग्य तीक्ष्णता विद्रोह, आक्रोश को व्यक्त किया है ।

'आखिर बीवी हूँ तुम्हारी' जो **'किसका है आसमान'** काव्य संग्रह में संकलित है में सविता भार्गव व्यंग्य के द्वारा स्त्री जीवन की विवशता को इंगित करती हुई कहती हैं–**''माफ कर दो मुझे /थके हारे दफ़्तर से लौटे तुम /और में नहीं थी चाय नाश्ते के साथ मुस्कराती हुई /नहीं पहुँच पाई घर तुम्हारे पहुँचने से पहले . . . /माफ़ कर दो मुझे /नहीं छुड़ा पाई तुम्हारी कमीज का दाग /रगड़ते रगड़ते फूट गया मेरे अंगूठे का फफोला /गलती मेरी ही थी /हड़बड़ाहट में रोटी की जगह पकड़ लिया था /गरम–गरम तवा ।''[3]**

स्त्री की जीवन शैली इतनी व्यस्त है कि यदि वह एक भी जिम्मेदारी से चूक जाती है तो स्वयं अपराधबोध से ग्रस्त हो जाती है । अपनी विवशता एवं पीड़ा का तो उसे अहसास ही नहीं रहता है दूसरों को बुरा ना लगे–सिर्फ इसी जुगत में मरती खपती रहती है ।

समाजिक रीति–रिवाजों को परम्परा के नाम पर ताउम्र औरतों को ढोना पड़ता है । बाल्यवस्था में विधवा हुई बुआ की दिनचर्या देखकर रोंये खड़े जो जाते हैं । उन्हें वह दुख भोगना पड़ रहा है जिसका अर्थ भी उसे उस उम्र में नहीं पता था । सविता **भार्गव जी** अपने काव्य संग्रह **'किसका है आसमान'** में इसी विडम्बना का हृदयविदारक वर्णन अपनी लम्बी कविता–बड़ी बुआ के माध्यम से व्यक्त करती है–

''ढलका नहीं अँसुवन जल/बोई नहीं कोई 'प्रेम बेलि'/एक कुँआरी उमर /धुलती रही नर्मदा के कुँआरे जल में/होते रहे मंगल कारज /पुजते रहे कुल के देवी–देवता /अमंगल सी बैठी रहीं, वे बाहर आँगन में /ताकती धूसर रास्तों को /एक जोड़ा भूरी दृश्यहीन आँखें'' [4]

स्त्री की यथास्थिति को बनाये रखने के गुनहगार केवल पुरुष समाज ही नहीं है, स्त्री भी स्वयं दूसरी स्त्री के अस्तित्व को सदियों से नकारती आयी है । घर में लड़की के जन्म पर पहले दादी दुखी होती है, फिर माँ दुखी होती है, उसके बाद नवजात शिशु (लड़की) के प्रति व्यवहार में इसलिए उपेक्षिता भाव लाया जाता है कि वह लड़की है । उसे कदम कदम पर अहसास करवाया जाता है, उसे लड़की बनाया जाता है । यह समाज उसे उसी ढाचे में ढालता है जो इसे चाहिए होता है उसकी प्राथमिकताएं उसके जन्म लेते ही निर्धारित कर दी जाती है । **'खामोशियाँ बोलती है'** काव्य संग्रह में संकलित कविता 'लाचारी' इसी विड़म्बना को प्रस्तुत करती है–

''लड़की का जन्म घर में हुआ/ इसलिए दोबारा से /औलाद को जन्म देने की हुई तैयारी/माँ के सिर एक के बाद /अब दूसरी जिम्मेदारी थी भारी /मुझे पालना है, इसको भूल /लड़के के जतन में लग गई /माँ व दादी हमारी ''[5]

स्त्री–विमर्श की बात अब शायद कुछ लोगों को पुरानी लगे लेकिन ये मुद्दा आज भी उतना ही ज्वलंत एवं नितांत आवश्यक है जितना 5 दशक पहले था, नहीं मिली है स्त्री को मुक्ति । भले ही समाज आज कितना ही आधुनिक हो गया हो, दिखावे की संस्कृति ने स्त्री जीवन को अलग तरह की विसंगतियों में डाल दिया है । कुल का मान–सम्मान सब कुछ ढोने का जिम्मा उसी का होता है । खामोशियाँ बोलती है– काव्य संग्रह में संकलित कविता 'वो औरत' में रेखा श्योराण कहतीं है–**''क्या लिखूं और क्या छोड़ूँ, /साँस उसकी पर दूसरों से पूछकर लेती है/आँखें उसकी पर दूसरों से पूछकर सोती है । /दर्द का सैलाब उसकी आँखों में पार . . . /दूसरों से पूछकर रोती है . . .''[6]**

स्थापित मूल्यों को मानते रहने में ही स्त्री की प्रतिष्ठा बनी रहती है । वह जरा–सी भी अपने कर्त्तव्यों या परम्परागत मूल्यों की लीक से बाहर निकलकर आत्मकेन्द्रित हुई नहीं कि उसका वजूद तार–तार कर दिया जाता है । उसे ऐसे–ऐसे उपमानों के साथ रख दिया जाता है जो सदैव संवेदनहीन, निर्जीव और टूटने एवं गिरने के लिए ही होते हैं । अनामिका जी कहती है कि –**''अपनी जगह से गिरकर /कहीं के नहीं रहते /केश, औरतों और नाखुन ।''[7]**

अपने अस्तित्व की लड़ाई में जीवन संघर्ष के झुलसाते ताप में तपती स्त्री अब थक सी गयी है । सामाजिक व्यवस्था के तीक्ष्ण प्रहार से हत–विक्षत स्त्री मन अब विश्राम चाहता है । बंजर जमीन पर लगातार चलती कुदालों की तरह स्त्री अब आन्तरिक रूप में मृत प्रायः हो गयी है । अनामिका जी 'दूब–धान' में कहती हैं–**''एक बंजर में कुदालों की तरह चलती हुई /मैं थक गई हूँ /पोछ दो मेरा जरा माथा कि मुझको नींद आ जाए [8]**

इस दौर में एक अजीब तरह की एक बीमारी जो पकड़ती जा रही है–वह है अविश्वास, शक करना । एक दूसरे पर रोज रिश्तों का प्रमाणित करने की आवश्यकता बन पड़ी है । शर्तनामा–सा पढ़ा जाता है रोज घर में, बाजार में, दोस्तों में । क्या ये यही बचा है सम्बन्धों में अनामिका जी 'खुरदरी हथेलियाँ' काव्य संग्रह में इसी अविश्वासी वातावरण के संदर्भ में कहती है–**''यह वक्त कैसा है ख्वाजा/सबको / सब पर /शक सा रहता है /बाजार में /घर में, दोस्तों में भी /एक शर्तनामा–सा बँटता चलता हैशर्तो के परे /क्या नहीं कुछ भी ?''[9]**

स्त्री मुक्ति की पक्षधर कवयित्रियों में गिनी जाने वाली प्रसिद्ध कवयित्री गगनगिल का रचना संसार काफी समृद्ध है । इनकी कविता 'सिर्फ शव' हृदयस्पर्शी प्रश्नों का जाल बुनती है । जिन्दा रहती स्त्री कोई प्रश्न नहीं कर सकती । उसे अनेक घात–प्रतिघातों का डर रहता है लेकिन 'शव' हुई रूह को किसी के वर्चस्व आधिपत्य का डर नहीं होता है । वे कहती

हैं– **''सिर्फ शव/पूछता है प्रश्न /हर युग में . . . / सिर्फ शव है /जो दूर नहीं जा सकता /अपनी देह से /और पूछ सकता है प्रश्न''**[10]

निष्कर्षः कहा जा सकता है कि ''प्रसिद्ध कवयित्रियों ने मनुष्य और मनुष्यता के, प्रेम और विश्वास के, स्त्री एवं पुरुष के, जीवन संघर्ष और जिजीविषा को अमर्ष एवं संघर्ष के, स्वाभिमान एवं अहम् के द्वंद्व के बेशुमार प्रश्न हल किये हैं । व्यक्ति एवं समाज के विविध आयाम, विविध रंगों में दर्ज हुए हैं । इनकी कविताएँ आत्मचिन्तन, आत्मविश्लेषण आत्म साक्षात्कार तथा आत्ममंथन की कविताएँ हैं । केवल स्त्री खीज एवं क्षोभ का ही परिणाम नहीं हैं–स्त्री लेखन ।

ये कविताएँ समाज के पुरुषवादी चेहरे को भारतीय दृष्टि के आधार पर मानवीय और मुलायम बनाने की पहल भी करती हैं । स्वयं को सचेत करती हुई वर्जनाओं को तोड़ती हुई आज स्त्री अपने वजूद की तलाश में निकल पड़ी है तो इसे कोरा पुरुषसता का विरोध ना समझा जाए ।

नीलेश रघुवंशी कहती है कि स्त्री अपने हिस्से के आसमान को मुलायम बनाती हुई भविष्योन्मुख है । अब यह तो समय ही तय करेगा कि उसकी और संसार की क्या परिणति होती है । वे कहती हैं– **''कि इक्कीसवीं सदी उन्माद और उद्धोन्माद की सदी होगी /या होगी उजड़ते संसार में एक हरी पत्नी की तरह ।''**[11]

सोच में बदलाव और स्त्री स्वावलंबन समय की माँग है पर इसमें संयम, आत्मीयता, पूरकता की दरकार है । अँधेरे से उजाले की ओर अग्रसर स्त्री अस्मिता के प्रश्न अपनी पूर्णता एवं परिणति के लिए किसी भी अनहद तक जा सकते हैं । वाजदाखान कहतीं है कि अपने पंखों का विस्तार पाने के लिए अब हम भूखे–प्यासे रहकर पूरे ब्राह्मण्ड की परिक्रमा करने के लिए भी तैयार हैं । 'माफ करना दोस्त' कविता में वे कहती हैं कि– **मैं इंतजार कर सकती हूँ सदियों तक /अपने शब्द का अर्थ पाने के लिए / मैं भूखी रह सकती हूँ अपने सपनों को /कथा सूत्र में पिरोने के लिए /मैं परिक्रमा कर सकती हूँ /ब्रह्माण्ड के इस छोर तक ''**[12]

स्त्री–विमर्श केन्द्रित काव्य संग्रह की प्रत्येक कविता आरम्भ, मध्य, अंत में कोई न कोई हल न होने वाला प्रश्न लेकर उपस्थित है । सुनीता जैन एक प्रबुद्ध कवयित्री हैं (राग और आग) काव्य संग्रह में पूछती हैं– **''पूछ रही थी स्वयं से/खिड़की का होना ही । /क्या होता है सच में प्यार''**[13]

अतः 21वीं सदी की प्रसिद्ध कवयित्रियों के काव्य में स्त्री विमर्श के प्रत्येक प्रश्न को जोखिमों सहित उठाया है । संघर्ष के आशातीत परिणाम भी अपेक्षित है। स्त्री विमर्श में कवयित्रियों ने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है कि स्वानूभूति एवं सहानूभूति में बहुत अंतर है । पुरुष सत्ता इसका विरोध इस आधार पर करती है कि वह केवल खीज एवं क्षोभ से भरा साहित्य है । इससे जनकल्याणा नहीं हो सकता । औरतें क्या चाहती हैं ? स्वयं का कल्याण, खुद का आसमां, ऊचाईयाँ, स्वतंत्रता, समानता, कोई बताए कि यदि उसे ये सब मिल जाएगा तो इसमें जनकल्याण कहाँ प्रभावित हो रहा जाएगा । वे भी तो जन कल्याणा का हिस्सा हैं । आधी आबादी हैं । समाजोन्मुख स्त्रियाँ केवल अपने बंधनों को ढील देने के लिए ही कह रही हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सविता सिंह – नींद थी और रात थी, पृ.–24
2. वहीं, पृ.–33
3 सविता भार्गव, आखिर बीवी हूँ तुम्हारी, ''किसका है आसमान'' काव्य संग्रह, पृ.–21
4 सविता भार्गव, ''किसका है आसमान'', बड़ी बुआ, पृ.–64
5 रेखा रानी, खामोशियाँ बोलती हैं, लाचारी, पृ–12
6 वहीं, वो औरत, पृ. 82
7 अनामिका, खुरदरी हथेलियाँ, पृ. 15
8 अनामिका, दूब–धान, पृ.–88
9 वही, खुरदरी हथेलियाँ पृ. 38
10 गगन गिल, सिर्फ शव, अँधेरे में बुद्ध, पृ.–125
11 नीलेश रघुवंशी, पानी का स्वाद, नयी सदी, पृ.–61
12 वाजदा खान, माफ करना दोस्त, समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी+फरवरी, 2010, पृ.–31
13 सुनीता जैन, राग और आग, पृ.–106

RRIJM 2015, All Rights Reserved